© 2019 IJSRST | Volume 6 | Issue 2 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X

पर्यावरण संरक्षण – एक दार्शनिक अध्ययन

डॉ0 ऋतु शुक्ला
असि. प्रो. संस्कृत
राजकीय महाविद्यालय, तिलहर
शाहजहाँपुर (उ0प्र0)

पर्यावरण 'परि' तथा 'आवरण' इन दो शब्दों के योग से बना है। परि का अर्थ है चारों ओर तथा आवरण का तात्पर्य है ढकना या आच्छादन। पर्यावरण के अन्तर्गत हमारे चारों ओर विद्यमान प्राकृतिक व्यवस्थाएँ, सम्पूर्ण सौरमण्डल में होने वाली परिस्थितियाँ एवं शक्तियाँ आती है जो मानवीय क्रियाकलापों को प्रभावित करती हैं। अतः भूमि, जल, वायु, वनस्पति, वृक्ष, जीव–जन्तु इत्यादि जिनका हम अपने जीवन में नित्य अनुभव करते हैं, समवेत रूप से पर्यावरण का निर्माण करते हैं।

पारिस्थितिकी पर्यावरण अध्ययन का वह भाग है जिसमें हम जीवों, पौधों, जन्तुओं और उनके सम्बन्धों या अन्य जीवित या गैर जीवित पर्यावरण पर परस्पराधीनता के बारे में अध्ययन करते हैं।

प्रसिद्ध पर्यावरणविद् **डॉ0 डगलस एवं हालैण्ड**[1] के अनुसार पर्यावरण या वातावरण वह शब्द है जो समस्त बाह्य शक्तियों, प्रभावों, परिस्थितियों का सामूहिक रूप से वर्णन करता है जो जीवधारी के जीवन, स्वभाव, व्यवहार, अभिवृद्धि, विकास तथा प्रौढ़ता पर प्रभाव डालता है।

आदिकाल से ही प्रकृति तथा मनुष्य का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध रहा है। प्रकृति तथा प्राकृतिक उपादान मानवीय जीवन के अनिवार्य अंग रहे हैं। कालान्तर में मनुष्यों द्वारा प्राकृतिक संसाधनों के असीमित एवं अविवेकपूर्ण दोहन, औद्योगिकीकरण एवं भौतिक उष्मीय जैविक अथवा रोडियोधर्मी गुणों के द्वारा जब पृथ्वी, जल, वायु, वनस्पति इत्यादि पर्यावरणीय अवयवों में अवांछनीय परिवर्तन एवं विकृति उत्पन्न की गयी, जो मानव अस्तित्व के लिए संकटकारक हो गयी उसे हम पर्यावरण प्रदूषण कहते हैं।

जब यह अति औद्योगिकीकरण, रसायनों के अविवेकशील प्रयोग तथा परमाणु शक्तियों के अति प्रयोग से जल, वायु, वनस्पति, पशु, पक्षी इत्यादि पर संकट गहराने लगा तब मानव का ध्यान इस ओर गया क्योंकि प्रदूषण के कारण उसके स्वयं के अस्तित्व पर भी खतरा मंडराने लगा। पर्यावरण संरक्षण के सम्बन्ध में अनेक विचारधाराएँ सामने आयी तथा अनेक बैठकों के माध्यम से इसके संरक्षण हेतु विचार विमर्श तेज हो गए। पर्यावरणीय संकट या प्रदूषण वैश्विक समस्या बन गया है क्योंकि विकसित देशों ने अपनी विकासशील अवस्था में तथा विकासशील देश तो अद्यतन भी पर्यावरणीय घटकों को निरन्तर हानि पहुँचाने में लगे हुये है।

उन विविध विचारधाराओं को जिसमें पर्यावरण संरक्षण के स्वर मुखर हुए उनमें मुख्य रूप से दो विचारधाराएँ सामने आयीं–**पूर्वी** तथा **पश्चिमी** विचारधारा।

पूर्वी विचारधारा के अन्तर्गत हमारे वेद एवं वेदान्त दर्शन, जैन एवं बौद्ध दर्शन, ताओवाद, कन्फ्यूशियसवाद तथा शिन्तो धर्म प्रमुख रहे है जिसमें पर्यावरणीय चिंताएँ उपयोगिता नहीं वरन् नैतिकता के स्तर पर विकसित हुयी है। वेद एवं वेदान्त दर्शन प्रकृति को ईश्वर मानता है। वेदों में औषधियों तथा वनों के प्रति नमन करते हुए इनके हितकारी, अनुकूल तथा शान्तिदायक होने की प्रार्थना की गई है–

नमो वृक्षेभ्यः (यजु0 16.17)

नमो वन्याय च (यजु0 16.34)

औषधीनां पतये नमः। (यजु0 16.19)

औषधयः शान्तिः वनस्पतयः शान्ति (36.16)

ऋग्वेद के सम्पूर्ण **अरण्यानी सूक्त (10.146)** में अरण्य को देवत्व पद पर प्रतिष्ठित कर उसके प्रति अकारण हिंसा न करने का निर्देश प्राप्त होता है– **अरण्यानी न वै हन्ति।**[2] वैदिक ऋषि इस तथ्य से अवगत थे कि मनुष्य तथा पशु–पक्षियों के सह निवास से ही पारिस्थितिकी सन्तुलन बनाए रखा जा सकता है–

सं सं स्त्रवन्तु पशवः समश्वाः समु पुरूषाः।

सं धान्यस्य या स्फाति संस्त्राव्येव हविषा जुहोषि। (अथर्व. 2.26.3)

अर्थात् जैसे सियार, गिध्द, कौवे, शूकर इत्यादि जन्तु दुर्गन्धयुक्त शवों तथा पदार्थों को खाकर जल तथा वायु को प्रदूषित होने से बचाते हैं। सर्प चूहों की तथा नेवले सर्प की संख्या संतुलित रखते हैं। ऋग्वेद में वृक्षों के प्रदूषणरोधी होने के कारण उनके संरक्षण का[3] तथा वृक्षारोपण करने का निर्देश है क्योंकि ये जलीय स्रोतों के रक्षक हैं।[4]

यजुर्वेद में **''मापो औषधी हिंसीः''** (यजु. 6.22) कहकर वृक्षों को क्षति पहुँचाने का निषेध किया गया है। वेदों में ऋषि पृथ्वी को माता, अन्तरिक्ष को भ्राता, द्युलोक को पिता तथा स्वयं को उसका पुत्र घोषित करते हैं–

माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः (अथर्ववेद 12.1.12)

भूमिर्माता भ्रातान्तरिक्षम्, द्यौर्नः पिता (अथर्ववेद 6.12.2)

इस प्रकार के सम्बन्ध स्थापित करने के कारण मनुष्य इसके प्रति आत्मीयभाव एवं श्रद्धाभाव रखते हुये इन्हें हानि पहुँचाने से बचेगा। इतना ही नही पृथ्वी सूक्त के एक मन्त्र में कथन भी है कि हे पृथ्वी। मैं तेरे वृक्षों को इस प्रकार काटूँ कि वे पुनः अंकुरित हो जाए। हे विमृग्वरि (विशेष रूप से शोधन करने वाली) मैं तेरे मर्मस्थल पर प्रहार न करूँ।[5] उपर्युक्त मन्त्र पर्यावरणीय समस्या के समाधान प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार के अनेकानेक विचार हमारे वैदिक दर्शन में मिलते हैं जिसका यदि थोड़ा भी अनुपालन किया जाये तो पर्यावरणीय संकट हो ही नहीं सकता।

इसी प्रकार जैन दर्शन का भी प्रकृति में चेतना मानने का विश्वास, जैन तथा बौद्ध दर्शन का अहिंसावाद, ताओवाद तथा कन्फ्यूशियसवाद तथा शिंतो धर्म का प्रकृति को ईश्वरतुल्य महत्व देना उपयोगितावाद नहीं है। इन

दर्शन में अन्तर्निहित भाव यह है कि प्रकृति को उपयोगिता की दृष्टि से न देखकर नैतिकता की दृष्टि से देखा जाये क्योंकि यदि ऐसा होगा तो हम पर्यावरण के प्रति अपने कर्तव्यों को समझते हुऐ इसके अंधाधुध दोहन से बचेंगे।

वहीं दूसरी ओर पश्चिमी विचारधारा अथवा पश्चिमी दर्शन और सामी धर्मों की सामान्य प्रवृत्ति इस सन्दर्भ में उपयोगितावादी है क्योंकि उनकी मानसिकता प्रकृति को मनुष्य से भिन्न हीन और उपभोग्य मानने की रही है। इस दर्शन के अनुसार ईश्वर ने प्रकृति मनुष्य के उपयोग के लिए निर्मित की है। पर्यावरण संकट उत्पन्न होने पर पर्यावरण संरक्षण हेतु चिन्ता के मूल में मात्र यह भाव निहित था कि मानव श्रेष्ठ है और उसका जीवन कैसे बचा रहे। यदि पर्यावरण पर संकट आएगा तो निश्चित रूप से मानव के अस्तित्व पर संकट आएगा। इसलिए पिछले 20–30 वर्षों में समाधान के जो प्रयास किए गए, चाहे वह पृथ्वी सम्मेलन हो या मांट्रियल प्रोटोकॉल हो, इन सभी सम्मेलनों में विभिन्न राष्ट्रों की यह कोशिश रही है कि किस प्रकार पर्यावरण के उपभोग अथवा दोहन का स्तर बनाए रखते हुए इस समस्या का समाधान हो। इस प्रकार के पर्यावरण संरक्षण के मुद्दे पर अपर्याप्त सोच (ींसववू म्दअपतवदउमदजंसपेउ) के विरोध मे ंनार्वे के प्रसिद्ध दार्शनिक आर्ने नेस ने अपने विचार गहन पारिस्थितिकी (क्समच म्बवसवहल) के रूप में दिया। उनके पारिस्थितिकी दर्शन के केन्द्र में अनेक मुद्दे हैं–

सर्वप्रथम, पारिस्थितिकी संकट का मूल कारण सामाजिक है, आर्थिक है या दार्शनिक?

दूसरा, पर्यावरण और मानव के सम्बन्धों का फैसला शक्ति के आधार पर होना चाहिए या नैतिकता के आधार पर?

तीसरा क्या मानव अधिकारों की तरह पशु अधिकारों को भी स्वीकार करना चाहिए या नहीं?

चतुर्थ, क्या विकास या संपोष्य विकास जैसी कोई भी धारणा स्वीकार्य है या नहीं, इत्यादि।

इन प्रश्नों के उत्तर में आर्ने नेस ने स्पष्ट किया कि पारिस्थितिकीय संकट का मूल कारण आर्थिक या सामाजिक न होकर दार्शनिक है। उन्होंने कहा कि न्यूटन की भौतिकी और डेकार्ट के मन शरीर भेद जैसी धारणाओं ने आधुनिक पश्चिमी मानसिकता को जन्म दिया जो मूलतः विभेदीकरण पर बल देती है न कि समन्वय पर। यह मानसिकता जड़ की तुलना में चेतन को श्रेष्ठ मानती है। यह द्वैतवादी मानसिकता अन्ततः प्रकृति के प्रति साधनवादी दृष्टिकोण पैदा करती है। अरस्तू, कार्ल मार्क्स, सार्त्र आदि दार्शनिक किसी न किसी रूप में जड़, वनस्पति और पशु जगत को मानव जगत से हीन मानते रहे हैं। आर्ने नेस के अनुसार जब तक यह मूल दृष्टिकोण अथवा द्वैतवादी मानसिकता (क्पबीवजवउपब टपमू) ही न बदल जाए तब तक पर्यावरण की समस्या सुलझ नहीं सकती है।

दूसरा मुद्दा यह है कि मानव तथा प्रकृति के बीच सम्बन्धों का आधार शक्ति हो अथवा नैतिकता ? मनुष्य दास व्यवस्था का अन्त, सामंतवाद का अंत अथवा किसी भी प्रकार के शोषण का अन्त शक्ति नहीं अपितु नैतिकता के आधार पर करने में सक्षम हुआ। तो क्या प्रकृति के प्रति यह नैतिकतावादी दृष्टिकोण नहीं अपनाया जा सकता है ? अतः मनुष्य को स्वयं को प्रकृति से श्रेष्ठ नहीं अपितु पारिस्थितिकी समुदाय का ही एक अंग मानना चाहिए।

तीसरा, संपोष्य विकास की अवधारणा भी स्वयं में विवादित है। संपोष्य विकास (नेजंपदंइसम क्मअमसवचउमदज) की अवधारणा तो यह कहती है कि मानव का विकास प्राकृतिक दोहन की कीमत पर होता रहे

परन्तु उसकी गति धीमी कर दी जाए अर्थात् पर्यावरण में व्याप्त असंतुलन अथवा प्रदूषण तो होता रहे, प्रकृति की हत्या होती रहे परन्तु उसकी गति कम हो जाये। यह अपने आप में एक अस्वीकार्य धारणा है।

चौथा मुद्दा हमारे पर्यावरण संतुलन बनाने में मुख्य घटक पशुओं की स्वतन्त्रता से सम्बन्धित है। जिस प्रकार मानव को मानव होने मात्र से मानवाधिकार मिल जाते हैं तो क्या पशुओं को इस आधार पर पशु अधिकार नहीं मिलने चाहिए। कैलिकॉट जैसे जैव केन्द्रित पारिस्थितिकी दार्शनिकों ने पशु अधिकारों का पूर्ण समर्थन किया है। वैश्विक स्तर पर च्म्ज्। ;च्मवचसम वित म्जीपबंस ज्तमंजउमदज ूपजी ।दपउंसेद्ध और च्मवचसम वित ंदपउंसे जैसी संस्थाएँ भी पशु अधिकारों के लिए प्रयासरत हैं। प्रकृति में असन्तुलन व्याप्त होने के कारण तथा मानवों की पशुओं के प्रति हिंसात्मक प्रवृत्ति के कारण पशुओं की अनेक प्रजातियाँ लुप्त हो गयी हैं तथा अनेक लुप्तप्राय हैं। इन पशुओं का भी प्राकृतिक सन्तुलन बनाये रखने में महत्वपूर्ण योगदान है।

नेस, पारिस्थितिकी बोध (म्बवसवहपबंस न्दकमतेजंदकपदह) व पारिस्थितिकी चेतना (म्बवसवहपबंस ।ूतमदमे) के बीच में भेद बताते हैं। उनके अनुसार यदि पर्यावरण की समस्याओं की जानकारी देने मात्र से पारिस्थितिकीय बोध पैदा होता और सभी मानव अपने पारिस्थितिकीय दायित्वों का निर्वहन करेंगे तो ऐसा नहीं है। व्यावहारिक सत्य तो यह है कि अत्यधिक शिक्षित व्यक्ति भी ऐसे कार्य आदतन करते हैं जो पर्यावरण विरूद्ध हैं जैसे पॉलीथीन का प्रयोग, धूम्रपान, नदियों में अस्थिविसर्जन, पुष्प विसर्जन इत्यादि। इस समस्या का समाधान जानकारी से नहीं बल्कि मूल्यों में परिवर्तन से सम्भव है। अतः इसका समाधान पाठ्यपुस्तकों द्वारा न होकर मानव की मूल चेतना में परिवर्तन द्वारा हो सकता है जो कि धर्म के माध्यम से ही संभव है क्योंकि धर्म में निहित तत्त्व मीमांसा के आधार पर भी मनुष्य प्रकृति के प्रति अपना दृष्टिकोण तय करता है।

अतः पश्चिमी विचारधारा यद्यपि प्रकृति के प्रति उपयोगितावादी दृष्टिकोण अपनाती है तथापि आर्ने नेस जैसे दार्शनिकों के द्वारा प्रकृति अथवा पारिस्थितिकी संतुलन हेतु दिए गए नवीन विचार भी प्रासंगिक हैं जिनका आधार उपयोगिता न होकर नीति मीमांसा है। इन्होंने पर्यावरण संरक्षण की दिशा को न केवल एक मौलिक सोच दी है अपितु आधुनिक पश्चिमी दृष्टिकोण पर गंभीर सवाल भी खड़े किए हैं। यदि आर्ने नेस द्वारा प्रतिपादित मानव प्रकृति सम्बन्ध स्थापित किया जाये तथा प्रकृति के प्रति नैतिक दृष्टिकोण अपनाकर उसके अधिकारों के प्रति सचेत रहा जाये तो पर्यावरण संरक्षण की दिशा में सकारात्मक परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं। पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखने हेतु वैश्विक स्तर पर जो विविध सम्मेलन समय–समय पर आयोजित किए जा रहे हैं वो मात्र खानापूर्ति बनकर न रह जाए अपितु पूर्वी विचारधारा तथा आर्ने नेस द्वारा दिए गए मौलिक बिन्दुओं के आधार पर ही उनकी कार्ययोजना बननी चाहिए तथा उसका सफल कार्यान्वयन भी होनी चाहिए।

आज विकसित तथा विकासशील देशों का यह दायित्व है कि वे जिस प्रकार अपने वर्चस्व को बनाए रखने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं उतनी ही ऊर्जा एवं शक्ति से प्रकृति को बचाए रखने का प्रयास करें। विकसित देशों ने हरित ऊर्जा (ळतममद मदमतहल) तथा अनेकानेक ऐसी तकनीकी इजाद की है जिससे पर्यावरण प्रदूषित नहीं होता परन्तु वे इस तकनीक को विकासशील देशों को हस्तान्तरित नहीं करना चाहते। इसके अलावा स्वच्छ एवं सस्ती ऊर्जा तथा उच्च तकनीक को विकासशील देशों को उपलब्ध कराने का दायित्व भी विकसित देशों का है परन्तु विकसित

देश विकासशील देशों पर अपना वर्चस्व बनाए रखने हेतु इस तरह का कोई भी प्रयास नहीं करना चाहते। उनकी यह मानसिकता भी पर्यावरण संरक्षण के प्रयासों को कमज़ोर करती है। वहीं दूसरी ओर विकासशील देशों को भी पर्यावरणीय प्रदूषण कम करने के लिए जीवाश्मीय ऊर्जा यथाः कोयला, गैस, पेट्रोलियम पदार्थों का उपयोग, बायोमास इत्यादि से उत्पन्न ऊर्जा पर अपनी निर्भरता को कम करना चाहिए। इनके स्थान पर नवीकरणीय ऊर्जा (त्मदमूंइसम मदमतहल) अपनाने की ओर प्रयास करने चाहिए। नवीकरणीय ऊर्जा यथा भूतापीय ऊर्जा (जीमतउंस मदमतहल), भूतरंग ऊर्जा, सौर ऊर्जा (वसंत मदमतहल), समुद्री ऊर्जा (ज्पकंस मदमतहल) इत्यादि से ऊर्जा का बड़ा स्रोत प्राप्त हो सकता है और वो भी प्रकृति को हानि पहुचाएँ बिना।

अभी हाल ही में 2017 में च्ंतपे में आयोजित 19जी प्दजमतदंजपवदंस ब्वदमितमदबम वद म्दअपतवदउमदज – ब्सपउंजम में अमरीका जैसे विकसित देश अपनी ज़िम्मेदारी न निभाते हुए इससे यह कहकर अलग हो गया कि चीन तथा भारत सबसे ज़्यादा प्रदूषण फैलाते हैं, चूँकि वो विकसित देश है अतः उसका इस समस्या से कोई सारोकार नहीं है – यह अत्यन्त ही दुःखद है। ऐसी असंवेदनशीलता एवं गैर ज़िम्मेदाराना व्यवहार यदि इतने बड़े देश करेंगे तो पर्यावरण संरक्षण की मुहिम को गति कैसे मिल पाएगी – यह शोचनीय है।

अतः पर्यावरण संरक्षण अथवा पारिस्थितिकीय सन्तुलन बनाए रखने हेतु दार्शनिक दृष्टिकोण से सोचने की आवश्यकता है। अपने स्वार्थों तथा क्षणिक लाभ के लिये प्रकृति के अंधाधुंध दोहन पर रोक लगानी चाहिए। यदि हम प्रकृति को उसके अधिकारों को प्रदान करने के विषय में सोचे तो काफी हद तक इस समस्या का समाधान हो सकता है।

आज आवश्यकता है कि हम पूर्वी विचारधारा को अपनाकर नैतिकता की दृष्टि से इस विषय पर मंथन करें। अपनी प्राचीन वैदिक संस्कृति में वर्णित पर्यावरणीय तत्त्वों के अवलोकन, अनुशीलन एवं आचरण से हम पर्यावरण प्रदूषण की समस्या से मुक्ति पा सकते हैं तथा उसकी सार्थकता एवं सत्यता को सम्पूर्ण विश्व में प्रसारित कर पश्चिमी देशों को भी इस ओर प्रेरित कर सकते है। पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से वेदों में सम्पूर्ण पर्यावरणीय तत्वों के सन्तुलन हेतु शान्ति की कामना वैदिक मनीषा करती है[6] –

'ऊँ धौ शान्तिरन्तरिक्षँूशान्ति पृथ्वी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वूँशान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि।'

1. डॉ. जसवीर सिंह मलिक – पर्यावरण शिक्षा, पृ0 5
2. ऋग्वेद 10.146.5
3. ऋग्वेद 6.48.17
4. ऋग्वेद 3.20.4
5. अथर्ववेद 12.1
6. यजुर्वेद 36.17